RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-09
September-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i09.065

अनुसूचित जातियों के आन्दोलन का स्वरूप

डॉ0 विकास कुमार

इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

'दलित' का शाब्दिक अर्थ दबाया या कुचला हुआ है। वास्तव में दलित से अभिप्राय उस व्यक्ति या जाति या समुदाय से है जो धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक अर्थात सभी क्षेत्रों में उपेक्षित और दबा हुआ है।

'दलित' शब्द का चलन 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में 1919 के मांटेग्यू–चैम्सफोर्ड अधिनियम में पहली बार हुआ और 1932 के पूना पैक्ट के बाद डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अछूतों के लिए डिप्रेस्ड क्लास (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति) शब्द का इस्तेमाल किया। वर्तमान में दलित शब्द प्रायः शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल, मेहतर, आदिवासी आदि अछूत जातियों के लिए किया जाता है। दलित वर्ग में गिनी जाने वाली जातियों और समुदायों का निर्धारण ब्रिटिश सरकार द्वारा एक निश्चित मापदंड के अनुसार किया गया और यह कहा गया कि दलित वर्ग में ऐसी जातियां हैं जिनके शारीरिक स्पर्श से सवर्ण हिंदू अपने को अपवित्र मानते हैं। इस संज्ञा का प्रयोग किसी व्यवसाय के संबंध में नहीं बल्कि ऐसी जातियों के संबंध में है जिन्हें हिंदू समाज ने परंपरागत स्थान के कारण मंदिरों में प्रवेश की अनुमति नहीं दी है। जिन्हें अलग कुओं से पानी लेना पड़ता है या पाठशालाओं के भवन में बैठकर नहीं बल्कि उसके बाहर खड़े रहकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। डॉ. अम्बेडकर ने भी उन्ही जातियों को दलित माना जो अपवित्रकारी होती है। डॉ. अम्बेडकर ने भी उन्हीं जातियों को दलित माना जो अपवित्रकारी होती हैं। वर्तमान समय में सरकार दलित का सीधा अर्थ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से ही लेती है।

उन्नीसवीं शताब्दी को भारतीय इतिहास में पुनर्जागरण व सामाजिक सुधार का काल माना जाता है। राममोहन राय तथा ब्रह्म समाज के अन्य सुधारकों ने जातिप्रथा की निंदा की किंतु उनका प्रयास समाज के उच्च जातियों के बीच गैर–बराबरी के भेद को मिटाने तक ही सीमित था। उदाहरण के लिए, केशवचंद सेन के नेतृत्व वाले भारत के ब्रह्म समाज ने ब्राह्मण से जनेऊ परित्याग करने की मांग की तथा इसे जातीय व्यवस्था के लिए क्रांतिकारी कदम माना गया। दलितों की स्थिति की ओर इनका ध्यान तक नहीं गया। दयानंद सरस्वती और उनके आर्य समाज ने सभी जाति के लोगों के वेदों को पढ़ने का अधिकार देने की बात कहीं लेकिन दलितों में शिक्षा थी ही नहीं, इसलिए वे उसका लाभ उठा ही नहीं सकते थे। रामकृष्ण परमहंस व उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद मानव सेवा को ईश्वर सेवा बताकर निर्धनों की सेवा पर विशेष बल दिया। उन्होंने किसी भी व्यवसाय को ऊंचा या नीचा नहीं माना और छुआछूत का विरोध किया, लेकिन इससे दलितों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ और दलितों की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। दक्षिण भारत में थियोसोफिकल सोसाइटी ने दलितों के बच्चों को शिक्षित करने के उद्देश्य से एक विद्यालय खोला। ईसाई मिशनरियों ने भी दलितों को शिक्षित करने व उनकी सेवा करने का कार्यक्रम चलाया। लेकिन इनका वास्तविक उद्देश्य दलितों को ईसाई बनाना था। इसलिए उनके प्रयासों को संदेह की दृष्टि से देखा गया। महाराष्ट्र में एम.जी. रानाडे व उनके प्रार्थना समाज ने 1898 ई. में दलित वर्ग मिशन की स्थापना करके जाति–प्रथा के खिलाफ आंदोलन चलाया लेकिन दलितों को उससे कोई लाभ नहीं हुआ। गांधी जी द्वारा दलितों की स्थिति सुधारने में जो प्रयास किया गया वह भी असफल रहा। दलितों की स्थिति इतनी दयनीय थी कि ब्रिटिश सरकार भी उन्हें ऊंचे पदों पर नियुक्त करने के योग्य नहीं मानती थी। शिक्षा पर ऊंची जातियों का एकाधिकार था और दलित जाति शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाती थी। सरकारी नौकरियों में केवल निम्न कार्य करने के लिए दलितों को रखा जाता था और उन्हें बहुत कम वेतन दिया जाता था। सामाजिक क्षेत्र में कानून बनने के बावजूद दलितों को सार्वजनिक सड़कों, तालाबों आदि का उपयोग करने नहीं दिया जाता है और सरकार द्वारा अनुदानित विद्यालयों में भी दलित जातियों के लड़कों के प्रवेश का उच्च जाति द्वारा विरोध किया जाता था।

दलितों की उक्त दयनीय स्थिति में सुधार लाने का वीड़ा उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में सबसे पहले जोती राव फुले और उनकी पत्नी सावित्री बाई ने उठाया। जोती राव फुले ने 1873 ई. में 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना करके दलितों को शिक्षित करने का अभियान प्रारंभ किया और उन्होंने उनके लिए अनेकों कठिनाइयों का सामना करते हुए विद्यालय खोले। उन्होंने दलित बस्तियों में बिजली, पानी और सफाई की व्यवस्था नगर पालिका के माध्यम से कराने का प्रयास किया और उनकी रहन–सहन में सुधार लाने का भी प्रयास किया। 'सत्यशोधक समाज' के माध्यम से उन्होंने दलितों का शोषण करने वाले पुरोहितों का बहिष्कार करने, सामाजिक उत्सवों,

RRIJM 2015, All Rights Reserved

विवाद आदि पर फिजूल खर्ची कम करने, देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना करने में धन खर्च करने आदि से मना किया। उन्होंने दलितों को अपने अलग सामाजिक और सांस्कृतिक नियम बनाने के लिए भी कहा। उदाहरण के लिए, 'सत्यशोधक समाज' ने पूरे महाराष्ट्र में गैर–ब्राह्मणों में नई पद्धति से विवाह की, नई विधि विकसित की जिसमें सरल विधि से बिना पुरोहित के विवाह और अन्य दूसरे मांगलिक उत्सवों में बगैर फिजूलखर्ची के साधारण तरीके से संपादित किया जाता था। उन्होंने स्त्रियों की स्थिति को भी ऊंचा उठाने का प्रयास किया और लड़कियों की शिक्षा पर बल दिया। उन्होंने हिंदू धर्म का तीव्र विरोध करते हुए पुनर्जन्म, दैववाद, स्वर्ग–नरक, पाप–पुण्य आदि का खंडन किया। 'सत्यशोधक समाज' की गतिविधियों के फलस्वरूप दलितों के सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में एक नई चेतना पैदा की और इसका प्रभाव भारत के शेष भागों में भी पड़ा। दलित वर्ग अपने अधिकारों को पाने के लिए सचेष्ट हुआ और उनमें चेतना आने लगी। जोती राव फुले ने आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में भी दलितों की स्थिति को सुधारने की बात की।

ज्योती राव फुले की पत्नी सावित्री बाई ने भी दलितों की सेवा करने और उसकी स्थिति को ऊंचा उठाने में अपने पति का पूरा सहयोग किया और उन्होंने दलित लड़कियों को निःशुल्क पढ़ाकर महिलाओं में जागृति लाने का कार्य किया।

इसी प्रकार बंगाल में हरीचंद ठाकुर ने चांडालों की दशा सुधारने का प्रयास किया। उन्होंने उनके पिछड़ने का मुख्य कारण अशिक्षा माना और उन्हें शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने दलितों से कहा कि दलित शिक्षित बनें, कठिन परिश्रम करें, धन कमाएं तथा सरकारी नौकरियां प्राप्त करें तभी वे अपने स्थिति को सुधार सकते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि यदि दलित संगठित होंगे तो पूर्ण राजनैतिक शक्ति प्राप्त करके पूर्ण मुक्ति के पद पर अग्रसर होंगे। उन्होंने दलितों से कहा कि वे लोग जाति–भेदभाव का पालन न करें और न ही जाति व्यवस्था का समर्थन करें। उनके बताए हुए मार्गों पर दलितों ने कुछ हद तक चलने का प्रयास किया जिससे स्थिति में कुछ सुधार आया।

केरल में नारायण गुरू ने दलितों के लिए अलग से मंदिर बनाया जिसमें देवताओं की जगह एक आइने का टुकड़ा रखा गया था। उन्होंने जाति–पांति का विरोध करके दलितों को पूजा–पाठ से दूर रहने को कहा। उन्होंने एक आश्रम की भी स्थापना की। दलितों को अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए अपने खर्च में कमी लाने को कहा और उन्हें शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रोत्साहित किया।

केरल के एक अन्य सुधारक आयंकाली ने भी सदियों से दलितों की शिक्षा पर लगे प्रतिबंधों को तोड़ने के लिए 1904 ई. में दलि तों के लिए एक विद्यालय खोला। उद्यपि उच्च जाति के लोगों ने उसे जला दिया। आयंकाली जानते थे कि ज्ञान ही ताकत है और ज्ञान का स्त्रोत शिक्षा है। इसलिए उन्होंने दलितों की शिक्षा के लिए एक आंदोलन चलाया जिसके परिणामस्वरूप 1907 ई. में केरल के विद्यालयों में दलितों के प्रवेश के लिए वहां के राजा को आदेश देने के लिए विवश होना पड़ा।

महाराष्ट्र में दलितों की दशा सुधारने में छत्रपति शाहू जी महाराज की महत्वपूर्ण भूमिका रही। उनकी यह मान्यता थी कि शिक्षा सभी प्रगति एवं समृद्धि की कुंजी है। उनहोंने दलितों की दयनीय स्थिति के लिए उनकी अशिक्षा को ही मूल जड़ माना और उनकी शैक्षणिक स्थिति सुधारने के लिए 1912 ई. में निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था की। 1913 ई. में 'सत्यशोधक' स्कूल की भी स्थापना की तथा मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति देकर प्रोत्साहित किया। उन्होंने दलितों व पिछड़ों के लिए सरकारी संस्थाओं में 50 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा करके दलितों एवं पिछड़ों में आशा का संचार किया। 1917 ई. में बलुतेदारी प्रथा को समाप्त किया। छुआछूत को जड़ से मिटाने के लिए दंड का प्रावधान किया। उन्होंने सार्वजनिक रूप से दलितों के साथ भोजन किया और 1919 ई. में राजाज्ञा जारी करके सभी सार्वजनिक स्थानों पर अछूतों को जाने की छूट प्रदान की जाए। उन्होंने अपने इस कार्य के माध्यम से दलित समाज की स्थिति को सुधारने का सशक्त प्रयास किया।

इसी प्रकार वर्तमान झारखंड प्रदेश के बिरसा मुंडा ने आदिवासियों की शिक्षा पर विशेष बल दिया और अपने अनुयायियों को शराब छोड़ने, भगवान की पूजा में बलि आदि न देने, मांस भक्षण का त्याग करने को कहा और दलितों के हित के लिए संघर्ष किया।

महाराष्ट्र के संत गाडगे ने भी दलित समाज में व्याप्त अंधविश्वास और धर्म के नाम पर अत्यधिक खर्च करने की प्रवृत्ति में सुधार लाने का प्रयास किया। उन्होंने तीर्थ–यात्रा का खंडन, मूर्ति पूजा का विरोध किया। झाड़–फूंक करने वालों से बचने व दवा–इलाज कराने का सुझाव दिया और उन्होंने चमत्कार का भी विरोध किया। वह स्वयं निरक्षर होते हुए भी शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। शिक्षा के प्रचार के लिए उन्होंने शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। उनके इन प्रयासों से दलित समाज में फैले अंधविश्वास, अशिक्षा आदि को दूर करने में सहायता मिली।

उत्तर प्रदेश के अछूतानंद ने दलितों की दशा सुधारने के लिए कार्य किया। 1921 ई. में उन्होंने दिल्ली में अखिल भारतीय अनुसूचित जाति का एक बड़ा सम्मेलन किया जिसमें जमींदारी उन्मूलन, विचार का मुख्य विषय था। उन्होंने दलितों को जमींदारों के अत्याचारों का विरोध करने को कहा।

बड़ौदा के महाराज सयाजी गायकवाड ने भी दलित जातियों की दशा सुधारने के लिए छुआछूत का विरोध किया। दलितों में पिछड़ेपन का मूल कारण हिंदू धर्म को माना। जाति–प्रथा का उन्होंने विरोध किया और दलितों को शिक्षित

RRIJM 2015, All Rights Reserved

करने के लिए मेधावी छात्रों को छात्रवृत्तियां प्रदान कीं जिसका लाभ डॉ. अम्बेडकर ने उठाया।

तमिलनाडु में पेरियार ई.वी. रामास्वामी नायकर ने दलित समाज में चेतना जागृति करने का प्रयास किया। वह स्वयं ही सामाजिक उत्पीड़न के शिकार थे। उन्होंने 1925 ई. में आत्मसम्मान आंदोलन प्रारंभ किया जिसका उद्देश्य ब्राह्मण धर्म के प्रति लोगों में विरोध उत्पन्न करना, तमिल भाषा साहित्य व संस्कृति के प्रति स्वाभिमान जागृति करना व धर्म और ईश्वर के नाम पर पुरोहितों के शोषण को समाप्त करना था। यह आंदोलन आगे चलकर, ब्राह्मण विरोधी, धर्म विरोधी व ईश्वर विरोधी भी हो गया। पेरियार दलितों को दलित बनाए रखने में तीन संस्थाओं धर्म, जाति और उत्तर से आए आर्य प्रभाव को मानते थे। धर्म को ही बुराई व अन्याय की जड़ मानते थे। पेरियार ने अपने आंदोलन के प्रथम चरण में अंधविश्वास व पुराने रीति–रिवाज के उन्मूलन पर, दूसरे चरण में जाति धर्म पर, तीसरे चरण में आर्थिक उन्नति और चौथे चरण में द्रविड़ राज्य की स्थापना पर बल दिया। वह बुद्धिवाद पर भी बल देते थे और बौद्ध धर्म से प्रभावित थे।

उपरोक्त सभी सुधारकों के प्रयासों के बावजूद बीसवीं सदी के प्रथम तीन दशक तक दलितों की स्थिति में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं आया। धार्मिक जीवन के क्षेत्र में उनके साथ बरता जाने वाला भेदभाव बना रहा। मंदिरों में दलितों का प्रवेश वर्जित था ही पूजा–पाठ करने का अधिकार भी नहीं था। दलित समाज अंधविश्वास से मुक्त नहीं हो पाया। अस्पृश्यता अपनी चरम सीमा पर बनी हुई थी। उनको अपमानित करने वाली परंपराएं बरकरार थीं। दलितों को सवर्णों के कुओं, तालाबों से पानी लेने की भी मनाही थी। उनके शवों को जलाने नहीं दिया जाता था। शिक्षा के क्षेत्र में भी दलितों के लड़कों को छुआछूत के कारण न केवल अपमानित होना पड़ता था बल्कि उन्हें हर तरह से शिक्षा से वंचित रखने का प्रयास किया जाता था जिससे दलित छात्रों की संख्या नगण्य थी।

दलितों की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय थी कि उनका खान–पान, वेश–भूषा, रहन–सहन सभी उस तथ्य को दर्शाते थे कि वे आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक दबे, कुचले हुए लोग थे। उनका सर्वाधिक आर्थिक शोषण किया जाता था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी उन्हें अपमानित किया जाता था। यहां तक कि दलितों को अपने लड़के–लड़कियों का अच्छा नाम रखने पर भी प्रतिबंध था। ऐसी स्थिति में राजनीतिक अधिकारों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अशिक्षा के कारण उन्हें राजनीति का भी ज्ञान नहीं था।

संक्षेप में बीसवीं सदी के प्रथम तीन दशकों में दलित समाज की स्थिति बड़ी ही दयनीय थी जिसके लिए दलित समाज बहुत हद तक दोषी नहीं था बल्कि इसके लिए तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक व्यवस्था ही पूरी तरह से उत्तरदायी थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. देवेंद्र कुमार बेसेंतरी, भारत के सामाजिक क्रांतिकारी, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ. 122।
2. डॉ. कुसुम यदुलाल, दलित शिक्षा का परिदृश्य, कल्पज पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृ. 75।
3. डॉ0 कुसुम यदुलाल, दलित शिक्षा का परिदृश्य, पृ. 75–76।
4. शंभूनाथ (संपादक), सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, भाग–2, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004, पृ. 1051।
5. भारतीय समाज में ब्राह्मण और शूद्र–संस्कृति और प्रति–संस्कृति का द्वन्द्व : भवदेव पाण्डेय 'कथा क्रम'– नवम्बर, 2000।
6. शूद्रों का इतिहास : रामशरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 36–37।
7. शूद्रों का इतिहास : रामशरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 37।

RRIJM 2015, All Rights Reserved